पनचक्की का उद्गम और जीत

मार्क ब्लॉक

रूपांतर: सी. एन. सुब्रह्मण्यम

यहां हम एक बहुत प्रसिद्ध और चर्चित लेख प्रस्तुत कर रहे हैं जो मूलत: फ्रेंच भाषा में 1935 में 'अनाल्स्' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में मार्क ब्लॉक आटा पीसने के लिए बने यंत्र – पनचक्की के इतिहास का खुलासा करते हुए समझाते हैं कि कोई भी नई तकनीक किस तरह समाज में फैलती है; वह किन भौगोलिक परिस्थितियों में उपयोगी है, कहां नहीं; समाज ने कब उसे स्वीकारा, कब नहीं; समाज के विभिन्न तबकों के बदलते रिश्ते का उस तकनीक के उपयोग पर क्या असर पड़ा, आदि। अंत में यह पनचक्की का इतिहास न होकर यूरोप के सामाजिक इतिहास का खुलासा हो जाता है।

और इससे भी बढ़कर, ये लेख मानवता व तकनीकी विकास के बीच के द्वंद्वात्मक रिश्ते का बयान है।

मार्क ब्लॉक आधुनिक इतिहास लेखन के प्रवर्तकों में से हैं। उन्होंने सामाजिक इतिहास में किन मुद्दों पर अध्ययन करना चाहिए, तथा उन अध्ययनों के तौर तरीके व मापदण्ड क्या हों, आदि विषयों पर काफी काम किया है। उनकी आखिरी पुस्तक 'द हिस्टोरियन्स क्राफ्ट' जिन परिस्थितियों में लिखी गई, वह काफी प्रेरणास्पद है। 1939 में फ्रांस फासीवादी जर्मनी के अधीन हो गया था। विश्व के तमाम विश्वविद्यालयों ने ब्लॉक को अपने यहां आमंत्रित किया। लेकिन ब्लॉक उन्हें ठुकराकर भूमिगत प्रतिरोध आंदोलन में शरीक हो गए और गांव-गांव, शहर-शहर जाकर लोगों को नाज़ीवाद के खिलाफ संगठित करने में लग गए। इसी बीच उन्होंने इस पुस्तक को भी लिखा। 1944 में वे पकड़े गए और मार दिए गए। आधुनिक दौर के महानतम इतिहासकारों में से एक का आज़ादी की लड़ाई में इस प्रकार अंत हुआ।

ब्लॉक की विरासत केवल उनकी पुस्तकों में ही नहीं है। उन्होंने अपने मित्र इतिहासकार लूसियान फाबर के साथ मिलकर 'अनाल्स्' नामक पत्रिका की शुरुआत की जो आज भी इतिहास लेखन की अग्रणी पत्रिका है।

ब्लॉक के इस लेख का हिन्दी रूपांतरण सामान्य पाठकों के लिए किया गया है जो इतिहास में तो रुचि रखते हैं मगर यूरोप के इतिहास की बारीकियों से वाकिफ नहीं हैं। जहां भी कुछ हिस्से छोड़े गए हैं, वहां तीन बिन्दुओं से इस बात की ओर इशारा किया है। इसमें हमने ब्लॉक की पाद टिप्पणियों को हटा दिया है, क्योंकि संदर्भित ग्रंथ अपने देश में उपलब्ध नहीं हैं।

भूमध्यसागरीय उद्भव

जिस समय पनचक्कियां नदियों के बहाव के साथ घूमने लगी थीं तब तक यूरोप और भूमध्यसागरीय प्रदेशों में अनाज पीसकर खाने की प्रथा हज़ार साल से भी पुरानी हो चुकी थी। शुरू-शुरू में शायद खुरदरे पत्थरों से अनाज कूटा जाता होगा, लेकिन प्रागैतिहासिक काल में ही कभी पीसने के लिए उपयुक्त उपकरण के बनने से इस काम में एक निश्चित विकास हुआ। इसके बाद सिलबट्टे बनाए गए जो मिस्र की

मूर्तियों में दिखते हैं, जिन पर महिलाएं अनाज पीसती थीं। इसके बाद हाथ से घूमने वाली चक्की आई। भूमध्य-सागरीय प्रदेशों में, शायद इटली में, ईसा के एक-दो शताब्दी पहले इसका आविष्कार हुआ था और यह फ्रांस (गॉल) में रोमन साम्राज्य की स्थापना से पहले पहुंच चुकी थी . . . यह मनुष्य की शक्ति से चलती थी, लेकिन इस आविष्कार के कारण यह सम्भावना पैदा हो गई कि अनाज पीसने में मनुष्य की शक्ति की जगह जानवरों (घोड़ा या गधा) की शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। जब सम्राट केलीगुला ने रोम के सारे घोड़ों को राज्य के काम में लगा दिया, तब रोटी की कमी पड़ गई क्योंकि अनाज को पीसा नहीं जा सका। घूमने वाली चक्की के ही आविष्कार ने एक और तथा ज़्यादा महत्वपूर्ण खोज को संभव बनाया। इस चक्की की गति सरल थी (नियमित घूमना), जबकि सिलबट्टे में काफी जटिल गतियां होती थीं। इस कारण चक्की को चलाने में एक ऐसी ताकत को लगाया जा सकता था जो लगातार एक ही दिशा में चलती थी यानी बहते पानी की ताकत।

कहा जाता है कि मित्रडेट्स द्वारा बनाए गए महल में एक पनचक्की थी, यानी पनचक्की के बारे में हमारे स्रोतों में उपलब्ध पहला उल्लेख 120-63 ई.पू. का है। इस संबंध में मिले सारे तथ्य इसी बात की ओर इंगित करते हैं कि इसका आविष्कार ईसा पूर्व आखिरी शताब्दी में पूर्वी भूमध्यसागरीय प्रदेश में हो गया था।

पूरे यूरोप में पनचक्की का फैलाव यही बताता है कि यह पूर्वी भूमध्यसागरीय प्रदेश से क्रमशः फैली। *(यहां यूरोप के विभिन्न हिस्सों में पनचक्की के फैलने का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है - अनु)*

यह आश्चर्य की बात है कि यह महत्वपूर्ण आविष्कार भूमध्यसागरीय प्रदेश में हुआ जहां नदियों में पानी का बहाव साल भर एक-सा नहीं होता है। लेकिन उत्तरी यूरोप की नदियों की तुलना में ये नदियां सर्दी में जमती नहीं हैं। फिर भी यह एक विसंगति-सी लगती है कि पनचक्की भूमध्य सागरीय प्रदेश का आविष्कार है।

यह तय है कि चक्की भूमध्य सागरीय सभ्यताओं की देन है। इससे ही पनचक्की जनमी। यह भी उल्लेखनीय है कि पानी से चलने वाला चक्का अनाज पीसने के अलावा कई और कार्यों में भी उपयोगी हो सकता था, जैसे, नदियों व तालाबों से पानी खींचकर ज़मीन सींचना आदि। बहुत पुराने समय से मिस्र और भूमध्य-सागरीय प्रदेशों में इस चक्की का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता रहा है। इन इलाकों में गर्मी में जब

फसल होती है तब शुष्क जलवायु रहती है इसलिए सिंचाई का काफी महत्व है। अत: हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि सिंचाई के लिए बनाए गए चक्के का ही एक विकसित रूप पनचक्की है और ये दोनों भूमध्यसागरीय प्रदेश में ही विकसित हुए। यह तो हमें मानना ही होगा कि यह महज एक अनुमान है। इतिहासकार के धंधे में 'क्यों' एक ऐसा प्रश्न है जो उसे परेशान भी करता है और आनंद भी देता है। फिलहाल हमें पनचक्की का विकास कहां व क्यों हुआ इसका संतोषजनक उत्तर मिलता हुआ दिखता है।

पनचक्की का समाज पर असर

इस तकनीकी विकास का पहला नतीजा यह था कि कारीगरों में विशेषज्ञता और बढ़ी। नए औज़ार ने नया धंधा बनाया। पुराने समय के एक यूनानी कवि ने प्रात: काल के वर्णन में सिलबट्टे में अनाज पिसने की आवाज़ के साथ लोगों के जगने की बात कही है। जब हाथ से घूमने वाली चक्की का उपयोग होने लगा तो अनाज पीसने का काम गृहणियों या दासियों का काम माना जाने लगा। बड़े शहरों में यह नानबाई का काम था। रोमन भाषा में नानबाई को 'पिरटोह' कहा जाता है – यानी पीसने वाला। हाथ से या घोड़े से चलाई जाने वाली चक्की और तंदूर उसके धंधे के प्रमुख औज़ार थे। लेकिन पनचक्की को चलाने के लिए विशेष चक्की चालकों की ज़रूरत थी। उनकी एक श्रेणी का ज़िक्र रोम के सन् 448 के एक शिलालेख में मिलता है। मध्यकाल में इन्हें आमतौर पर शक की नज़र से देखा जाता था। चॉसर *(14वीं शताब्दी के अंग्रेज़ कवि – अनु)* ने लिखा है, 'सारस चक्की में कभी अपना घोंसला क्यों नहीं बनाते हैं – क्योंकि उन्हें डर है कि चक्की वाला अंडों को चुरा लेगा।' जो भी हो पुराने ग्रामीण समाज के बदलाव के अध्ययनों में सामान्य कृषक या कारीगर के स्तर के ऊपर उठकर मध्यम वर्ग का दर्जा पाने वालों में चक्की वालों का अहम स्थान है। ये सब उस उद्यमी व्यक्ति की वजह से हुआ जिसने सबसे पहले चक्की को जल देवताओं के सुपुर्द किया। तकनीक के इतिहास में किन्हीं गुमनाम अन्वेषकों की कोई छोटी पहल, वास्तव में ऐतिहासिक घटनाएं बन जाती है।

पिछली दो पीढ़ियों में हमने यातायात के साधनों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे हैं। विशुद्ध मशीनी ताकत ने जानवरों की ताकत की जगह ले ली है। पनचक्की से आया परिवर्तन भी कुछ इसी प्रकार का था। एक तरह से देखा जाए तो तकनीकी विकास का उद्देश्य जैवी दुनिया को शारीरिक श्रम से मुक्त करना है – लकड़ी की जगह लोहे का उपयोग, काठ कोयले की

जगह कोयला, नील की जगह रासायनिक रंग का उपयोग, आदि। मनुष्य के द्वारा प्राकृतिक ताकतों पर काबू पाने के इस प्रयास में ईसा के जन्म से पहले हुए आविष्कार निर्णायक रहे हैं। इनमें जिस ताकत का उपयोग किया जाने लगा वह चिर-परिचित थी और आसानी से काम में लाई जा सकती थी और साथ ही अति शक्तिशाली भी। इसी ताकत से आज हमारे टरबाइन चलते हैं। इससे मनुष्य और जानवर दोनों शारीरिक श्रम से बचे। यह आविष्कार इसलिए भी महत्वपूर्ण था क्योंकि यह भाप-इंजिन से पूर्व इस प्रकार का पहला और एक मात्र आविष्कार था। यह चक्का थोड़े परिवर्तन के साथ कई और कामों में उपयोग किया जा सकता था। जैसे, तेल का घान चलाने, चमड़ा कमाने, आरी चलाने, लोहार का हथौड़ा चलाने, आदि। चलते-चलते 17वीं-18वीं शताब्दी के कारखाने बने जो नदियों की ताकत से चलते थे। इंग्लैंड के कारखाने आज भी 'मिल' कहे जाते हैं ('मिल' यानी चक्की)।

पनचक्की की आंतरिक रचना में एक और खूबी है जो तकनीकी इतिहास के लिए काफी महत्वपूर्ण है। जैसे पहले बताया जा चुका है, नदी के बहाव के साथ एक पहिया घूमता है और उससे जुड़ा चक्की का पत्थर घूमता है। इसमें एक समस्या है – चक्का खड़ा घूमता है और पत्थर आड़ा घूमता है। खड़ी गति को आड़ी गति में बदलने के लिए गियर का उपयोग किया गया जो बाद में जाकर मशीनों के इतिहास में अत्यत महत्वपूर्ण साबित हुआ। *(इस संदर्भ में मार्क ब्लॉक याद दिलाते हैं कि पूरे यूरोप में काफी बाद तक बगैर गियर के पनचक्की भी उपयोग मे थी। ब्लॉक इतिहास की ये तकनीकी विविधता की इस पहेली को सुलझाने के लिए पाठकों को आमंत्रित करते हैं – अनुवादक)*

ईसवी सन् की शुरुआत में यूनानी-रोमन सभ्यता के लोगों को अपना भोजन तैयार करने के लिए एक विकसित मशीन उपलब्ध थी। यह एक ऐसी मशीन थी जिसके उपयोग से अनगिनत मनुष्यों को कठिन परिश्रम से राहत दिलाई जा सकती थी। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि इस मशीन के उपलब्ध होने के बावजूद इसका आम उपयोग बहुत ही धीमी गति से फैला।

पनचक्की की ज़रूरत कब व क्यों

यद्यपि पनचक्की का आविष्कार प्राचीन काल में हुआ था उसका विस्तार मध्यकाल में हुआ। फ्रांस में इसके विस्तार की कहानी ज़्यादा स्पष्ट है – सबसे पहले तीसरी शताब्दी का एक ज़िक्र मिलता है, इसके बाद सन् 500 के आसपास का – यानी उस समय

तक यह यंत्र दुर्लभ ही था। मेरी जानकारी के मुताबिक छठवीं सदी ईसवी का ज़िक्र है। इनमें से एक ज़िक्र उस समय के कानून में है – अर्थात तब तक इसका काफी फैलाव हो चुका होगा। लगभग यही कहानी रोम की भी है। वहां भी छठवीं या सातवीं सदी में ही इसका प्रचलन आम हुआ। *(यहां पर रोम व रोमन साम्राज्य में पनचक्की के उपयोग के साक्ष्यों की चर्चा है – अनु)*

इस तरह उपलब्ध तकनीकी संभावनाओं का उपयोग न करना रोमन साम्राज्य के लिए कोई खास बात नहीं थी। गॉटियर फरमाते हैं, "रोम ने, अपनी विकसित राजनैतिक संस्थाओं के समकक्ष प्राकृतिक संसाधनों पर कोई नियंत्रण हासिल नहीं किया।" बिल्कुल सही, लेकिन क्या रोम ऐसा नियंत्रण चाहता था?

कहा जाता है कि जब सम्राट वेस्पेसियन अपने राजमहल का जीर्णोद्धार कर रहा था तो एक कारीगर ने उसके सामने एक ऐसी मशीन का मॉडल पेश किया जो खंभों को ऊंचाई तक आसानी से पहुंचा सकती थी। सम्राट ने आविष्कारक को ईनाम तो दिया लेकिन आविष्कार को यह कह कर ठुकरा दिया कि 'मुझे लोगों को रोज़ी देनी है।' यह कहानी कई महत्वपूर्ण बातों की ओर इंगित करती है। पहली तो यह कि उस सभ्यता में तकनीकी आविष्कार करने की क्षमता की कमी नहीं थी। दूसरी वे भली-भांति समझते थे कि मशीनों से शारीरिक परिश्रम कम हो सकता है। *(यहां इस समझ के कुछ साक्ष्य प्रस्तुत हैं – अनु)* लेकिन उस सभ्यता को अपने लोगों को श्रम से बचाने की ज़रूरत कतई नहीं लगी, क्योंकि ईसवी सन् की शुरुआत में अपने कृषि उत्पादन की तुलना में वह बहुत अधिक घनी आबादी से संपन्न थी।

तमाम बड़े इस्टेटों (जो खेतिहर उत्पादन की इकाइयां थीं) में अनाज पीसने का काम गुलामों, खासकर महिला गुलामों का था। इन इस्टेटों के बड़े भूस्वामी अपने गुलामों के दुख दर्द के प्रति न तो संवेदनशील थे, न ही उन्हें कोई ज़रूरत थी कि वे मशीनें लगवाएं क्योंकि उनके पास गुलामों की फौज होती थी। छोटे घरों में या नानबाइयों के पास इतने साधन तो नहीं थे कि वे पनचक्की लगाते। इसलिए वे दासों से यह काम करवाते थे या खुद कर लेते थे। रोम जैसे बड़े शहरों में ज़रूर पनचक्की से काफी फायदा होता। लेकिन कोई आविष्कार तब तक नहीं फैलता है जब तक वह एक सामाजिक ज़रूरत बनकर न खड़ा हो जाए। तब उसका उपयोग एक रूटीन की बात बन जाती है।

कुछ इसी तरह की ज़रूरत साम्राज्य के विघटन के दौरान महसूस होने लगी। आमतौर पर आबादी घट रही थी। गुलामों की सप्लाई में रुकावटें आ गयी थीं। पुराने गुलामों की फौज को भी छोटे-छोटे काश्त में बसाया जा रहा था। ऐसे में लोगों को उस पुराने आविष्कार की याद आई, जिसका उपयोग बहुत कम हुआ था।

शायद इस आविष्कार के पीछे एक मेधावी की अनोखी कल्पनाशक्ति रही होगी। लेकिन प्रगति तभी होती है जब कोई विचार किसी सामाजिक ज़रूरत के दबाव में आकर वास्तविक रूप धारण करता है।

सामन्त युग में पनचक्की

नई तकनीक की विजय किसी एकमुश्त प्रयास का फल नहीं था। मनुष्य व जानवरों के श्रम से अनाज पीसने के प्राचीन तरीकों के यूरोप से लुप्त होने का इतिहास बहुत लम्बा और कटु सामाजिक संघर्षों से भरा है। दुर्भाग्यवश यह सारा इतिहास काफी धुंधला है।

एक महत्वपूर्ण और साधारण समस्या की वजह से पनचक्की की विजय यात्रा धीमी पड़ गई थी। पूरे विश्व में ऐसे कई क्षेत्र हैं जहां नदी - नालों का अभाव है। तत्कालीन यातायात के साधनों के पिछड़ेपन के कारण अनाज को पिसवाकर लाने के लिए खास जगहों पर लगी पनचक्कियों पर लोग निर्भर नहीं रह सकते थे। अतः उन्हें एक और नए आविष्कार पवन-चक्की के आने तक पुराने तरीकों से ही संतुष्ट रहना पड़ा।

यहां पर यह कहना भी ज़रूरी है कि सभी नदी-नाले पनचक्कियों को चलाने के लिए पूरी तरह उपयुक्त भी नहीं थे। जो सबसे उपयुक्त थे, वे भी समय-समय पर जम जाते थे, उनमें बाढ़ आ जाती थी या वे सूख भी जाते थे।

सेंट अलबान के मठाधीश ने तेरहवीं शताब्दी में अपने मठ की पनचक्कियों को सुधारते समय अपनी दूरदर्शिता की पहचान दी और एक पनचक्की जिसकी नदी सूख चुकी थी, की जगह एक बढ़िया घोड़ा-चलित चक्की की स्थापना की। 1741 ई. में पेरिस के महापौर ने आग्रह किया कि पिछले साल की ठंड और बाढ़ को देखते हुए शहर में हाथ की चक्कियां भी होनी चाहिए।

इस तरह की सलाहों के पीछे केवल प्राकृतिक विपदाओं का डर ही नहीं था। मध्यकाल में सामान्य रूप से यह माना जाता रहा कि हर शहर को दुश्मनों की घेराबंदी से बचाव करना चाहिए। मध्यकाल में ऐसा कोई किला नहीं था जिसमें साधारण चक्की न

हो। इटली के परमा शहर को सम्राट फेड्रिक-II ने कई महीनों तक घेर रखा था और उसने शहर की ओर बहने वाले सारे नदी-नालों का मार्ग बदल दिया था, तब शहरवासी हाथ और घोड़ों से चलने वाली चक्कियों के सहारे ही जीवित रह पाए थे। युद्ध सामान्य आर्थिक कामकाज को ठप्प करने के साथ लोगों को प्राचीन और सरल तकनीकों को उपयोग करने पर मजबूर कर ही देता था।

अंत में, अक्सर यात्रा पर रहने वालों के लिए हल्के उपकरण ज़रूरी थे। केरोलिन्जियन सेना की गाड़ियों से चक्कियों को ढोया जाता था क्योंकि उनके रास्तों में, खासकर जर्मनी में, ऐसे लम्बे-चौड़े प्रदेश थे जहां पनचक्की की जानकारी नहीं थी। आश्चर्य की बात है कि तेरहवीं सदी तक नॉरमन व्यापारी अपनी यात्राओं में चक्कियों को साथ लेकर चलते थे। निश्चय ही इसके पीछे केवल तकनीकी कारण ही नहीं थे। एक कारण आर्थिक भी था। कई जगहों पर ब्रेड या आटा दिन में एक खास समय पर ही मिलता था – व्यक्तिगत चक्की होने से यात्री ज़मींदारों को पीसने का शुल्क देने से बच जाते थे। ज़मींदारों के ये हक लोगों पर काफी भारी पड़ते थे। इनके बारे में हम आगे और पढ़ेंगे।

ये तो खैर चंद अपवादों की बातें हैं। लेकिन तथ्य तो यह है कि जहां युद्ध नहीं होते थे और पानी भी पर्याप्त था, वहां भी लम्बे समय तक पुराने तरीकों से काम चलता रहा। हमें इस विडम्बना को समझने के लिए कुछ बातों को ध्यान में रखना होगा। मध्यकाल की शुरुआती शताब्दियों में कोई नवाचार धीरे-धीरे ही फैल सकता था, क्योंकि महत्वपूर्ण लोगों के यहां काम करने के लिए गुलामों की फौज उपस्थित होती थी। और वे आचार-व्यवहार भी ज़िम्मेदार थे जिन्हें बर्बर आक्रांता अपने देश से लाए थे। जर्मनी (जहां से वे आए थे) के बड़े घरों में अनाज पीसने वाली दासी अन्य घरेलू काम करने वाली दासियों की तुलना में हेय दृष्टि से देखी जाती थी और उसकी जान और इज़्ज़त दोनों ही उनसे कम सुरक्षित थी। छठी शताब्दी तक ऐसी दासियों या नौकरानियों का ज़िक्र मिलता है। लेकिन रोम और उससे लगे जर्मनी के हिस्सों में जहां पानी की सुविधा थी, वहां बड़े घरों में से काफी तेज़ी से मनुष्य या घोड़ों द्वारा चलाई जाने वाली चक्की दुर्लभ होती गई। फ्रांस के केरोलिन्जियन स्रोतों या इंग्लैंड के स्रोतों से पनचक्कियों की ध्वनि लगातार सुनाई देती है, लेकिन फिर भी एक क्षेत्र बिलकुल अलग-थलग पड़ा रहा – वह था किसानों का घर जहां पुराने घिसे-पिटे तरीके बने रहे।

ज़रा उन शर्तों पर गौर करें जो

एक पनचक्की की स्थापना के लिए ज़रूरी थीं। सबसे पहले तो चक्की के स्थापक को पानी लेने का कानूनी हक होना चाहिए। चक्की निर्माण इतना मंहगा था कि जब तक बहुत बड़ी मात्रा में अनाज उससे नहीं पिसवाया जाए, तब तक वह लाभकारी नहीं बन सकती थी। दिलचस्पी की बात यह है कि हमारे दस्तावेज़ों में मिलने वाली सबसे पुरानी चक्कियां (रोम में हर सदी से और डिजान व जेनीवा में छठी सदी से) शहरी आबादी के काम आ रही थीं।

सामन्ती अधिकार, पनचक्की व कृषकों का संघर्ष

लगभग सारी चक्कियां जिनका इतिहास हमें मिलता है, सामन्ती हक के आधार पर बनी थीं। इनमें से कई बड़े मठों में स्थापित थीं जिनमें रहने वालों की तादाद काफी ज़्यादा थी। उनके सदस्यों के अलावा उन्हें कई नौकरों, उप सामन्तों व यात्रियों को भी खिलाना पड़ता था। अतः आटे की खपत काफी अधिक होती थी। ऐसे में वे श्रम की बचत करने के लिए कटिबद्ध रहे होंगे। हालांकि नियमों के अनुसार मठों के सदस्यों को सबसे कठिन काम खुद करना होता था। जर्मेन डी'ओक्सेर जैसे कुछ मुनि ज़रूर आटा पीसकर अपने शरीर को कष्ट पहुंचाते थे (जो पाप धोने में सहायक माना जाता था)। लेकिन लोचे के समझदार मठाधीश पनचक्की पसंद करते थे क्योंकि "इसकी मदद से एक गुरुभाई कइयों का काम कर सकता है और जिससे कई धर्मभीरू सज्जनों को फुर्सत मिल जाती है – शायद प्रार्थना में अधिक समय लगाने के लिए।"

इस बात में कोई शक नहीं है कि इन मठों ने सामन्त ज़मींदारों के सामने अनुसरणीय उदाहरण पेश किए। वे भी अपने इस्टेटों में काफी सारे सैनिक व खेतिहर नौकर रखते थे। इन सबको खिलाने के लिए सामन्त की खुद-काश्त ज़मीन होती थी जिस पर सामन्त खुद खेती करवाता था। इसके अलावा किसानों से कृषि उपज के रूप में लगान मिलता था। फसल कटते ही अनाज का अम्बार लग जाता था, जो पन-चक्की में पिसने के लिए तैयार होता था। शायद सामन्त की प्रजा (किसान) और आसपास के दूसरे किसान भी अपना अनाज पिसवाने इन चक्कियों में आते थे। इन चक्कियों की आय का एक बड़ा हिस्सा इन किसानों के द्वारा चुकाए गए शुल्क से मिलता होगा। संभव है कई सामन्त किसानों को मजबूर भी करने लगे हों कि वे अपना अनाज इन पनचक्कियों में ही पिसवाएं। लेकिन तब भी यह एक स्थापित परम्परा नहीं बनी थी। इसलिए शायद सेंट बेर्टिन मठ के अधीन किसान नवीं सदी में और सेंट डेनिस मठ के बन्धुआ

किसान दसवीं सदी में और उनके जैसे कई और जिनका ज़िक्र किसी दस्तावेज़ में नहीं मिलता है, अपने घरों में हाथ की चक्की से अनाज पीसते रहे।

लेकिन दसवीं सदी से ग्रामीण जीवन के आर्थिक एवं कानूनी ढांचों में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे। इन सामन्तों के पास अपने क्षेत्र पर हुक्म चलाने का अधिकार था और वे अपने क्षेत्र के न्यायाधीश भी थे। (उन दिनों राज्य की न्याय व्यवस्था विकसित नहीं थी) इन अधिकारों का उपयोग करते हुए बड़े सामन्तों ने अपने लिए कई एकाधिकार (फ्रेंच में इसे 'बान' कहते थे) निश्चित किए। उनके अधिकारों की परिधि में आने वाले सभी लोगों को सामन्तों के ही तंदूर में ब्रेड बनवाना था। वे केवल उसी की चक्की में अंगूर का रस निकालकर शराब बना सकते थे, गाय या सुअर के प्रजनन के लिए उसी के सांड का उपयोग कर सकते थे, दावन उसी के घोड़ों से करवा सकते थे, आदि। इसी क्रम में सबसे महत्वपूर्ण और प्राचीन एकाधिकार था, पनचक्की का उपयोग। इन सब उपयोगों के बदले अधीन किसान सामन्त को भुगतान करने के लिए मजबूर थे।

मध्यकालीन समाज में न्यायपूर्ण बात और परम्परागत बात इन दोनों के बीच में काफी भ्रांति रहती थी। सामन्तों की नई मांग शीघ्र ही पारम्परिक बन गई, 'बान' (एकाधिकार) सामन्ती हक का एक अभिन्न अंग बन गया, और तब तक बना रहा जब तक सामन्ती व्यवस्था खत्म नहीं हुई (ये अधिकार 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के बाद खत्म हुए)।

एक एकाधिकार स्थापित होने के बाद सामन्त की प्रजा को उसी की पनचक्की में अनाज पिसवाना पड़ता था और उस नदी के मालिक सामन्त को पिसवाने का शुल्क चुकाना पड़ता था। 11वीं और 12वीं सदी के बाद जब बड़ी-बड़ी खुदकाश्त ज़मीन टूटकर खत्म हुईं और लगान अनाज की जगह पैसों में दिया जाने लगा, तब भी सामन्तों की पनचक्कियों में अनाज पिसवाने वालों की कमी नहीं थी। यह सामन्त का पारम्परिक हक जो बन चुका था।

जैसा कि अन्दाज़ा लगाया जा सकता है, इस तरह के बलपूर्ण अधिकार काफी संघर्ष के बाद ही स्थापित हो पाए। पूरे सामन्ती इलाके में दूसरी चक्कियों की स्थापना को रोक पाना कठिन था। काफी निगरानी और थोड़े बहुत समझौते से शायद यह किया जा सकता था, लेकिन इस एकाधिकार की स्थापना में बाधा बनकर एक और समस्या खड़ी थी – घरेलू चक्कियां जो सदियों से हर झोपड़ी में घूमती रही, अनाज पीसती रही। नतीजा यह कि सामन्तों ने इसके खिलाफ युद्ध

छेड़ने का निश्चय किया।

दुर्भाग्यवश इस लम्बे झगड़े का पूरा विवरण फ्रांस या जर्मनी के लिए उपलब्ध नहीं है। फ्रांस में यह संघर्ष दसवीं व ग्यारहवीं सदी में हुआ होगा और इसी समय के फ्रांसीसी इतिहास की स्रोत सामग्री दुर्लभ है। सौभाग्यवश हमें 1207 का एक ज़िक्र मिलता है जहां 'यूमीजे' मठ के लोग विविल ज़मींदारी में बची हुई हाथ की चक्कियों को तोड़ डालते हैं। निश्चय ही यह ज़मींदारी मठ की सामन्तशाही ज़मीन से कभी किसी मठाधीश के चहेते के लिए अलग की गई होगी और वहां सामन्तशाही के सारे हक लागू नहीं रहे होंगे। ऐसे किस्से पहले के समय में काफी रहे होंगे लेकिन वे इतिहासकार की पकड़ में नहीं आते हैं।

लेकिन सामन्तों की जीत कभी भी पूरी नहीं रही और समय-समय पर गांव व शहरों में हाथ की चक्की का ज़िक्र मिलता रहता है। देहातों में सामन्तवाद के तंत्र परेशान करने वाले तो थे, लेकिन हर बात का पालन करवाने के लिए उनमें पर्याप्त ताकत नहीं थी। इस कारण सामन्ती हकों का लगातार पालन करवाना असंभव था। अवज्ञा में माहिर किसानों को काबू में रखने के लिए लगातार नियंत्रण के प्रयास की ज़रूरत थी। जर्मनी के शासकों ने पाया कि पूर्वी भागों के किसान अपनी घरेलू चक्की को त्यागने के लिए तैयार नहीं थे। अतः उन शासकों को पश्चिम से आकर बस रहे किसानों पर यह पाबंदी लगाकार संतुष्ट होना पड़ा।

फ्रांस में सत्रहवीं शताब्दी में जब सामन्तशाही अपने अधिकारों को पुनः स्थापित करने के लिए संघर्षरत थी तब, पनचक्की को लेकर हुई कई झड़पों के उल्लेख मिलते है। चूंकि किसान चोरी-छिपे घरों में आटा पीस लेते थे, इस कारण सामन्तों के अधिकार के तहत चल रही पनचक्कियों से पर्याप्त आय नहीं हो पा रही थी, अतः उन्होंने घरेलू चक्कियों पर पाबंदी लगाने के बदले उन पर शुल्क लगाना शुरू कर दिया। 1789 में क्रांतिकाल में किसानों ने जो जुल्म गिनाए उनमें यह जुल्म काफी प्रमुख था। लेकिन इंग्लैंड में मनुष्य के श्रम से पानी और हवा का युद्ध सबसे ज़्यादा स्पष्ट है।

इंग्लैंड में सामन्तवादी अधिकार सन् 1000 के बाद फ्रांस से आए नॉरमन आक्रांताओं द्वारा स्थापित किया गया था। इंग्लैंड में सामन्तवादी एकाधिकार फ्रांस की तुलना में कम स्थापित था। लेकिन पनचक्कियों पर सामन्ती अधिकार लागू करने का प्रयास आमतौर पर हुआ और उसके खिलाफ संघर्ष भी हुआ। यहां पर विरोध काफी जानदार इसलिए भी था क्योंकि यह देश भूमध्यसागरीय प्रभावों से दूर था और जर्मनी और स्केंडिनेवियाई

संस्कृतियों का असर यहां काफी था। यहां पनचक्की जो बड़ी ज़मींदारियों में 11वीं सदी के अंत से थी, मध्यम वर्गों के बीच धीरे-धीरे ही फैली। अंग्रेज़ी शहरों को जो अधिकार पट्टे (चार्टर) सामन्तों/राजाओं द्वारा दिए जाते थे। उनमें अक्सर यह कहा जाता था कि इन शहरों में हाथ-चक्की का उपयोग हो सकता है। इस तरह की अनुमति फ्रांस या जर्मनी के पट्टों में नहीं मिलती है। सन् 1120 से 1151 के बीच एक उच्च कुल की महिला ने अपनी पनचक्की को जब एक मठ को दान में दिया तो उन्होंने उस दस्तावेज़ में यह बात भी डलवाई कि, 'यहां के लोग हाथ की चक्की नहीं रख सकते हैं।' अक्सर सामन्तों के अधिकारी घरों में घुसकर हाथ की चक्कियों को टुकड़े-टुकड़े कर देते थे। गृहणियों के विद्रोह का भी ज़िक्र है। न्यायालयों में लम्बे मुकद्दमों के बाद अधीन प्रजा के हमेशा परास्त होने के भी विवरण हैं। मठों के 13वीं, 14वीं सदी के वृतांतों में इन झगड़ों के कागज़ात भरे हैं। सेंट अलबांस मठ में तो यह संघर्ष एक महाकाव्य बन बैठा।

इंग्लैंड के हेबर्टफ़ॉर्डशायर ज़िले के इस छोटे कस्बे को मठाधीशों (जो उस शहर के स्वामी थे) ने किसी प्रकार की रियायत देना स्वीकार नहीं किया तो यहां के निवासी पड़ोसी शहरों के नागरिकों की देखा-देखी उठ खड़े हुए। ये लोग किसान नहीं, बल्कि कारीगर थे। वे घर पर अनाज पीसकर चक्की शुल्क और चक्की चालक की युक्तियों से बचना तो चाहते थे, साथ ही कपड़ा तैयार करने में सामन्तों की मिल के उपयोग से भी बचना चाहते थे। पहला विवाद सन् 1274 में उठा। मठाधीश ने हाथ की चक्कियों व कपड़ों को जप्त कर लिया, उनके अधिकारियों व लोगों के बीच आपसी मारपीट हुई। नागरिकों का एक संगठन बना जो पैसा इकट्ठा करके मुकदमा लड़ने चला। मठ के लोग राजा के समक्ष प्रार्थनाएं करने लगे, महिलाओं ने रानी को अपनी तरफ करने का प्रयास किया। लेकिन मठाधीश रानी को एक गुप्त दरवाज़े से मठ के अंदर चुपके से ले गए। अंत में राज दरबार में लम्बा मुकदमा चला और हमेशा की तरह शहरवासी हारे और बदले में उन्हें मठाधीश को पांच बैरेल उम्दा मदिरा देनी पड़ी।

सन् 1314 में एक बार और विवाद उठा। तब 1326 में नागरिकों ने अपने अधिकारों का लिखित प्रमाण मांगा (जिसमें घर पर पीसने का अधिकार भी शामिल था)। इस सिलसिले में खुला विद्रोह हुआ और मठ को दो बार घेर लिया गया। अंत में राजा के हस्तक्षेप के बाद समझौता हुआ। फिर भी मठाधीश के एकाधिकारों का मुद्दा सुलझा नहीं। इस स्थिति का

फायदा उठाते हुए घर-घर में चक्कियां घूमने लगीं। लेकिन 1331 में एक नया मठाधीश – भयानक कुष्ठ रोगी रिचर्ड – आया। उसने मुकदमा जीत लिया। पूरे शहर से चक्कियों के पत्थर मठ में लाए गये और फर्शी बनाकर ज़मीन पर गाड़े गए – युद्ध में जीती गई ट्रॉफी की तरह। लेकिन 1381 में जब इंग्लैंड के सामान्य लोगों का महान विद्रोह हुआ जिसमें वेट टेलर और जान बॉल ने नेतृत्व दिया था, तो सेट अलबांस के लोग भी प्रभावित हुए और मठ पर हमला बोल दिया। उन्होंने उस कुख्यात चक्की के पत्थरों वाले फर्श को नष्ट कर डाला जो उनकी हार का प्रतीक था। पत्थर तो अब पीसने के काम नहीं आ सकते थे, फिर भी सब लोग एक-एक टुकड़े को अपनी जीत व एकता का प्रतीक मानकर घर ले गए – 'उसी तरह जैसे श्रद्धालु इतवार के दिन दिव्य ब्रेड को तोड़कर ले जाते हैं।' इस विद्रोह के बाद जो आज़ादीनामा मठाधीश को देना पड़ा उसमें हर घर पर चक्की से पीसने का अधिकार भी शामिल था। यह महान विद्रोह भूसे की आग की तरह जलकर खत्म हो गया। जब समूचे इंग्लैंड में विद्रोह का खात्मा हुआ तो शाही फरमान के तहत वे सारे समझौते, जो लोगों ने बलपूर्वक करवाए थे, समाप्त कर दिए गए। क्या एक शताब्दी से चल रहे संघर्ष का यह अंत था? बिलकुल नहीं, इस संघर्ष के इतिहासकार अपनी कहानी के अंत में यह स्वीकार करते हैं कि कम-से-कम जौ पीसने के लिए घरेलू चक्कियां फिर काम करने लगीं और फिर उन पर प्रतिबन्ध लगा।

हाथ की चक्कियां पूरे इंग्लैंड में अपनी विनम्र सेवा लम्बे समय तक देती रहीं। समय-समय पर उनको लेकर हुए संघर्षों के ज़िक्र हमें मिलते हैं।

संक्षेप में जब लोहे और कोयले का ज़माना आया तब भी प्राचीन औज़ारों की जगह पानी और हवा से चलित मशीनों ने पूरी तरह नहीं ली थी। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि 19वीं सदी तो क्या, आज भी आयरलैंड, स्कॉटलैंड, शेटलैंड, नॉर्वे, पूर्वी प्रशा, पूर्वी यूरोप आदि में हाथ की चक्कियां उपयोग में हैं।

लेकिन इन अपवादों के कारण हमें गुमराह नहीं होना चाहिए। जब भाप का इंजिन हाथ की चक्की और सिलबट्टे को पूरी तरह परास्त करने आया, तब तक पश्चिम में खाया जाने वाला ज़्यादातर आटा कई सदियों से पनचक्की या पवन-चक्कियों में पिस रहा था। निश्चय ही अगर किसानों को उनके हाल पर छोड़ दिया जाए तो पुराने तरीकों को वे फिर भी नहीं त्यागते। सामन्त भूस्वामियों ने जो पनचक्कियों के मालिक थे, उन

चक्कियों पर ऊंचे शुल्क लगाकर न चाहते हुए भी रूढ़िवाद को बढ़ावा दिया, लेकिन उन्होंने अंत में बलपूर्वक रूढ़ि को तोड़ा। कई मायनों में ये सामन्ती उपक्रम आजकल के बड़े व्यावसायिक उपक्रमों के समान हैं। शुरू में उन्होंने श्रम-शक्ति के अभाव से पीड़ित होकर इस महत्वपूर्ण तकनीकी सुधार को बढ़ावा दिया, फिर उन्होंने कठोरता के साथ इस व्यवस्था को अपने चारों ओर थोपा। इस प्रकार तकनीकी विकास दो रुकावटों से जूझते रहने का, निश्चय ही यह एक उल्लेखनीय उदाहरण नहीं है।

मार्क ब्लॉक: मार्क ब्लॉक उन आधुनिक इतिहास लेखकों में से हैं जिन्होंने सामाजिक इतिहास में किन मुद्दों पर अध्ययन करना चाहिए, तथा उन अध्ययनों के तौर तरीके व मापदण्ड क्या हों, जैसे विषयों पर काफी काम किया है। उन्होंने इतिहास लेखन के लिए 'अनाल्स्' नामक पत्रिका की शुरुआत की। मार्क ब्लॉक ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान गांव-गांव में लोगों को नाज़ीवाद के खिलाफ संगठित किया था। 1944 में वे पकड़े गए और उन्हें मार डाला गया।

मूल लेख: फ्रांसीसी में। जो पाठक इस लेख का अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ने में रुचि रखते हैं वे *A Maurice Aymard & Harbans Mukhia*, **French Studies in History, Vol. 1**, Orient Longman, Delhi 1988, pp 215-242 देख सकते हैं। इस अंग्रेज़ी लेख के आधार पर हिन्दी रूपांतरण किया गया है।

हिन्दी रूपांतरण: सी. एन. सुब्रह्मण्यम। एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं।

पनचक्की भारत में

भारत में भी पनचक्कियों का इस्तेमाल सैकड़ों सालों से होता आ रहा है। आज भी यहां के पहाड़ी राज्यों हिमाचल प्रदेश व उत्तरांचल में इनका उपयोग बड़े पैमाने पर होता है। ये इन पहाड़ी प्रदेशों के दूर-दराज़ इलाकों में स्थित गांवों के लोगों के न केवल गेहूं पीसने व धान कूटने के काम आती हैं बल्कि अब तो बिजली भी प्रदान कर रही हैं।

पहाड़ी इलाकों में साल भर तेज़ गति से बहने वाले कई नदी-नाले व झरने होते हैं। पानी के इन स्रोतों में से एक धारा को अलग दिशा

देकर चक्की तक लाया जाता है जो अपनी गति से टरबाईन (पंखों) को घुमाने का काम करती है। जब भी किसी व्यक्ति को गेहूं आदि पीसना होता है तो वह पानी की धारा को चक्की की तरफ मोड़ देता है और चक्की चलने लगती है। अपना काम खत्म करके वह व्यक्ति फिर से धारा को पूर्ववत कर देता है।

ज़्यादातर इन चक्कियों की मिल्कियत पंचायत या इन्हें इस्तेमाल करने वाले गांवों के सभी लोगों की होती है। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से व्यक्तिगत चक्कियां भी शुरू हो गई हैं जिनका व्यवसायिक इस्तेमाल होता है। व्यवसायिक तौर पर चलाई जाने वाली चक्कियों में न केवल गेहूं पीसने का काम होता है बल्कि धान से चावल निकालने, तेल निकालने व बिजली का उत्पादन भी किया जाता है।

हिमाचल प्रदेश के अलग-अलग इलाकों के कई छोटे-बड़े राजाओं ने इन पनचक्कियों के निर्माण को प्रोत्साहित किया था। इन्हीं राजाओं में से एक जुब्बल राज्य के राजाओं ने उत्तरांचल के गढ़वाल क्षेत्र में भी पनचक्कियों का निर्माण करवाया था। इन पनचक्कियों पर कर लगाकर ये राजा अच्छी-खासी आमदनी प्राप्त करते थे। अंग्रेज़ी सरकार ने भी अपने इलाके की पनचक्कियों पर कर लगाया था जो आज भी लागू है।

आज उत्तरांचल के केवल गढ़वाल क्षेत्र में करीब 70,000 पनचक्कियां हैं। यहां इन्हें 'घरात' कहा जाता है। पिछले कुछ सालों से कई गैर-सरकारी संगठन इन 'घरातों' के व्यवसायिक इस्तेमाल में लोगों का सहयोग करने लगे हैं। ये मुख्य रूप से पनचक्कियों की बिजली उत्पादन की क्षमता को विकसित करने की कोशिश कर रहे हैं। एक पनचक्की अगर ढंग से काम करे तो करीब 5 किलोवाट तक बिजली का उत्पादन करती है और आज कई गांवों में तो 'घरात' मालिक पूरे गांव को 10 रुपए प्रति बल्ब प्रति माह की दर से बिजली सप्लाई भी कर रहे हैं। इस तरह की बिजली का सबसे बड़ा फायदा है कि सरकारी बिजली की तरह यह कभी गुल नहीं होती।

— गौतम पांडेय

गौतम पांडेय: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं।